

A poetic inquisition

जवाब देना होगा

Answer to be sought in 21st century from self, society, soul and Sarkars
to sustain true democracy and scientific temper in developing countries

Volume-I "Questions of Postmodern World"
- House of Nomadic dreamchanters



कुछ दबें हुए जज्बात, छुपाये बैठा हूं, खोये हुए कुछ अल्फ़ाज़, सजाये बैठा हूं।
बेशक भड़क जाओगे, सुनकर तुम, लेकिन ज़वाब दोगे, ये आस लगाए बैठा हूं।।

Shashank Singh &
Dheeraj Kumar

A poetic in

जवाब दे

Answer to be sought in 21st century
to sustain true democracy and scienti

Volume-I "Questions of
- House of Nomadi





हैप्पी फ़ादर्स डे

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥

आभेस्वीकृते

‘जवाब देना होगा’ कि इस संस्करण में, मैं उन तमाम लोगों का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने मुझे लिखने के लिए प्रेरित किया।

सर्वप्रथम मैं अपने पूजनीय पिता जी श्री अजय प्रताप सिंह, माता जी श्रीमती आशा सिंह और नाना श्री राम जी सिंह का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने बचपन से ही चीजों को समझने की ओर उनके विश्लेषण, उचित सामाजिक और तार्किक मूल्यों के आधार पर करने की शक्ति प्रदान की। मैं आज काफी गौरवान्वित महसूस करता हूँ कि ऐसे अभिभावकों के संरक्षण में मैंने अपना बचपन बिताया।

मैं आभार व्यक्त करना चाहता हूँ विकास रंजन सर का भी जिन्होंने हर विपरीत परिस्थितियों में मार्गदर्शन किया और दुनिया को समझने का एक बेहतरीन अंदाज मेरे मस्तिष्क में विकसित किया।

मैं धन्यवाद कहना चाहता हूँ, आनंद कुमार चौबे जी का जिन्होंने यह किताब लिखने के लिए प्रेरित ही नहीं किया अपितु संपादक की भूमिका भी बखूबी निभाई है।

मैं धन्यवाद व्यक्त करना चाहता हूँ अपने समस्त परिवार गणों – श्रीमती सुशीला सिंह, विनय सिंह, विकास सिंह, विवेक सिंह, अजीत सिंह, शिवली सिंह, शिवांगी सिंह, शिवानी सिंह, सौम्या सिंह, सरल सिंह, मोहित सिंह, चित्रांगदा सिंह, अद्विका सिंह और राजा पाल का समस्त सुख दुख में साथ खड़े रहने के लिए।

मैं अपनी मानसिक वैचारिक और बौद्धिक उपज के जन्मदाता, समस्त मित्रगण- चंद्रकांत बागोरिया, सिद्धार्थ कृष्ण त्रिपाठी, राकेश जयसवाल, सुमित कुमार अग्रवाल, हिमांशु शाही, एकांश प्रताप सिंह, विवेक मणि त्रिपाठी, दीपक पाण्डेय, मुकेश त्रिपाठी, प्रियव्रत त्रिवेदी, कुशाग्र सिंह, उज्ज्वल, विनोद सिंह, कृष्ण प्रताप सिंह, आशीष वर्मा, सौरभ कुमार, नीरज केसरवानी, श्रेयस सिंह, अनंत विजय, शुभम सिंह का तहे दिल से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। अपने मित्रगणों के सानिध्य में रहकर और बातें करके जीवन में बहुत कुछ सीखने का मौका मिला।

मैं स्वयं से जुड़े सभी लोगों का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने कभी न कभी मेरे मस्तिष्क में अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

अंत में मैं, ईश्वर का, अपने देश, अपनी सेना और समस्त जनमानस का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही आज मैं यह संस्करण लिखने में कामयाब हो पाया हूँ।

शशांक सिंह

सर्वप्रथम मैं अपने पूजनीय पिताजी श्री जसवत सिंह और माताजी श्रीमती शाला देवी का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिनकी छत्रछाया में मैंने अपने जीवन को अनुग्रहित किया। पिताजी की मानसिक स्थिति खराब होने के बाद उत्पन्न हुए मुश्किल हालातों में मेरी माताजी ने जिस धैर्य और परिश्रम का परिचय देते हुए परिस्थितियों के विपरीत सदैव हमारे लिए सबसे अच्छा करने का प्रयास किया, उसका मैं सदैव ऋणी रहूँगा। मुझे शिक्षित करने का पूरा श्रेय मेरी माता जी के अथक प्रयासों को ही जाता है। किताबें पढ़ने और कविता लिखने की रुचि का सारा श्रेय मैं पिताजी को देना चाहता हूँ। श्रीमद्भागवत गीता का संपूर्ण ज्ञान सार, उनके वाचन में सुनना मेरे लिए मेरे जीवन के सबसे आनंदित पलों में हमेशा रहेगा। जितने भी उपन्यास मैंने पढ़े हैं, वो सब मुझ से पहले पिताजी पढ़ते हैं, उनके विश्लेषण के बाद ही उस पुस्तक को मैं पढ़ता हूँ। मैं आज काफी गर्व महसूस करता हूँ ऐसे अभिभावकों के संरक्षण में मैंने अपना बचपन बिताया।

मैं आभार व्यक्त करना चाहता हूँ मेरे मातृकुल सूर्या परिवार का जिनमें नानी श्रीमती वीरवती, श्री विजय सूर्या, श्रीमती चमेली सूर्या, श्री रामचरण सूर्या, श्रीमती कांता सूर्या, श्री सुरेन्द्र सूर्या, श्रीमती उषा सूर्या, श्री कमल सूर्या, मीना सूर्या तथा सूर्या परिवार के सभी लोगों को जिन्होंने हर विपरीत परिस्थितियों में हमारा मार्गदर्शन किया।

मैं धन्यवाद कहना चाहता हूँ शशांक सिंह जी का जिन्होंने ना केवल यह किताब लिखने के लिए प्रेरित किया बल्कि अपने साथ इस किताब को लिखने का अवसर भी दिया और संपादक की भूमिका निभाई।

मैं धन्यवाद व्यक्त करना चाहता हूँ अपने समस्त परिवार गणों- श्री हरिसिंह, श्रीमती शांति, श्री देवेन्द्र, श्री राजीव गौतम, श्रीमती रेनु गौतम, श्री अर्पण सिंह, श्रीमती निशा रानी, श्री धीरसेन जोशी, श्रीमती कांता जोशी, श्री अमीचंद, श्रीमती योगिता, श्री अनिल, श्रीमती कमलेश, श्री अनीता, श्री मुकेश, आशीष, मयंक, सिद्धांत, मोहित और स्नेहा का और समस्त सुख दुख में साथ खड़े रहने के लिए शुक्रिया अदा करता हूँ।

मैं अपनी मानसिक वैचारिक और बौद्धिक उपज के जन्मदाता समस्त मित्रगण हिमांशु जोहरी, मनोज कुमार, शिवम गोयल, रवि कुमार, शैकी चंद्रा, सौरभ कटारिया, शशांक शर्मा, मनीषा ग्रोवर, स्वेता, विधि सिन्हा, श्वेता का तहे दिल से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। अपने मित्रगणों के सानिध्य में रहकर और बातें करके जीवन में बहुत कुछ सीखने का मौका मिला। मैं आभार व्यक्त करता हूँ उन सभी लोगों का जो कहीं ना कहीं मेरे जीवन से जुड़े रहे हैं तथा जिन्होंने कहीं ना कहीं मेरे जीवन में अपनी छाप छोड़ी है।

अंत में मैं सभी को धन्यवाद करता हूँ, जिनके आशीर्वाद और प्यार की वजह से मैं यह संस्करण लिखने में गर्व का अनुभव कर रहा हूँ।

धीरज कुमार

और अंत में हम यहीं प्रार्थना करते हैं कि:

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

प्रस्तावना

भारतीय संविधान अनुच्छेद 51A (ज): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

दबें हुए जज्बात, छुपाये बैठा हूं,
खोये हुए अल्फ़ाज़, सजाये बैठा हूं।
बेशक भड़क जाओगे, सुनकर तुम,
कुछ ऐसा, कयास लगाये बैठा हूं।
फिर भी दोगे, हमेशा साथ मेरा
आज भी, ये आस लगाए बैठा हूं॥

प्रस्तुति सौजन्य से: House of Nomadic Dreamchanters

'जवाब देना होगा' Volume-I "Questions of Postmodern World"

हम इंसान हैं और यही प्रवृत्ति हमें जानवरों से अलग करती हैं क्योंकि हम सवाल पूछ सकते हैं, हम जवाब मांग सकते हैं और जवाबों में भी सवाल ढूँढ़ सकने का प्रयास कर सकते हैं।

हम भारत के नागरिक हैं और यह सिर्फ हमारा मौलिक अधिकार ही नहीं अपितु मौलिक कर्तव्य भी है कि हम सवाल पूछकर, जवाब मांगकर अपनी विचारधारा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और समाज सुधार की दिशा में प्रेरित करें। एक लोकतान्त्रिक गणतंत्र के संप्रभु नागरिक होने के नाते, इस संप्रभुता को बनाए रखने के लिए सवाल पूछना, जवाब मांगना और जवाबों में फिर से सवाल खड़ा करना अत्यंत आवश्यक है। इस कठिन समय में जब कोरोना वायरस नामक महामारी चारों तरफ फैली हुई है, हमें मानवता के सबसे बहुमूल्य उपहार, जो कि सवालों को पूछना और जवाबों को मांगना है, को भूलना नहीं चाहिए। क्योंकि विपत्ति काल में समाज में निहित शक्तियाँ हमेशा से ही केन्द्रीयकरण की ओर उन्मुक्त होती आयी हैं।

आजकल ना कोई सवाल पूछना चाहता है, ना कोई जवाब देना चाहता है। सब गूंगे बन बैठे हैं, सब बहरे बन बैठे हैं, सब अंधे बन बैठे हैं और सवालों को

बौना बता कर उनका मजाक उड़ाया जाता है, सवाल पूछने वालों को अंगूठा दिखाया जाता है।

हमें सवाल सिर्फ सरकार से नहीं बल्कि समाज से भी पूछने होते हैं, सवाल हमें खुद से भी पूछने होते हैं, सवाल हमें परिस्थितियों से भी पूछने होते हैं, अपने खुद से भी पूछने होते हैं और सिर्फ कुछ सवाल पूछने से ही हमारा कर्तव्य पूरा नहीं होता है। हमें जवाब भी मांगने होते हैं और खुद भी जवाब देने होते हैं। खुद यह जो जवाब हमें देने हैं कभी हमें खुद को देने हैं, कभी अपने पर्यावरण की तरफ अपनी निर्ममता को लेकर देने हैं, कभी महिलाओं पर हुए अत्याचार को लेकर देने हैं, कभी मजदूरों को देने हैं, और कहीं हमें हमारी कठिन निर्बल परिस्थितियों पर देने होते हैं। चूँकि आजकल सवालों के जवाब में सिर्फ सवाल ही पैदा हो रहे हैं इसलिए आज हम कह रहे हैं कि जवाब देना होगा, हां जवाब देना होगा।

इस संकलन 'जवाब देना होगा' के प्रथम संस्करण में हमने अपनी कविताओं के माध्यम से काफी सारे सवाल पूछे हैं और सिर्फ सवाल पूछ के हम रुके नहीं हैं हमने यह भी समझाया है कि हां जवाब देना होगा, और क्यों जवाब देना होगा। 21वीं सदी के इस काल में शायद कुछ बड़े चुनिंदा पेचिदा सवाल जो मानवता हाँथ फैला कर पूछ रही है उनमें से कुछ सवालों के जवाब यहां हमने मांगने की विनम्र कोशिश की है।

पहली कविता 'जवाब देना होगा' में यह जवाब एक स्त्री के माध्यम से माँगा गया है, जिसने अपनी जिंदगी में कई तरीके के जुल्म देखे हैं। जिसने भ्रूण हत्या, बाल विवाह और दफ्तरों में अपमान जैसे कई अत्याचार महिलाओं पर होते देखे हैं। जिसे पितृसत्ता की व्यवस्था ने सिर्फ लड़के पैदा करने के लिए मजबूर कर दिया है और उसकी खूबसूरती पर लांछन लगाकर कई बार तेजाब फेंकने की धमकी देकर डराया भी गया है। वह इन सवालों के जवाब चीख कर, चिल्ला कर मांग रही है और यह चेतावनी भी दे रही है कि अगर जवाब नहीं दिया गया तो आने वाली नस्लें और समय, तुम सब को माफ नहीं करेगा। अगर जवाब नहीं दे पाओगे तो चाहे तुम पुरुष हो, चाहे महिलाएं, चाहे सरकार हो या चाहे सलाहकार हो सब गुनहगार बनोगे।

अगली कविता 'सवाल एक पत्रकार की कलम से' में यह जवाब पत्रकारों की कलम से माँगा जा रहा है कि उसने क्यों सवाल पूछने बंद कर दिए हैं? फिर जवाब कैसे मिलेंगे? पत्रकार की कलम आज बड़ी फ्रीकी सी क्यों पड़ गई है और पत्रकारिता के नाम पर सिर्फ उन्माद ही क्यों परोसा जा रहा है?

फिर 'श्रम देवी' में यह सवाल लॉक डाउन के दौरान शहर से लौटती हुई एक प्रवासी मजदूर महिला भी पूछ रही है और हमें जवाब देना होगा कि वह शहर जो उसको बड़ा उसका सा लगता था आज उसी के लिए उसमें जगह क्यों नहीं है? कि वह सरकार जो हर बार वायदे करती थी उससे, आज उसको घर से निकाल कर जब सड़क पर फेंक दिया गया तो चुप क्यों है?

अगले संकलन 'लुढ़कती अर्थव्यवस्था पर' में यह सवाल उस 5 ट्रिलियन डॉलर की ओर अग्रसर अर्थव्यवस्था से है, अर्थशास्त्रियों से भी है, कामगारों से भी है, और सरकारों से भी है, क्या किया जाए कि गरीबों का इस बढ़ती भागती अर्थव्यवस्था में समन्वय हो सके। कविता में लुढ़कती अर्थव्यवस्था के बीच सरकार के 'आल इस वेल' कहने के रवैये को लेकर व्यंगात्मक रूप से जवाब माँगा जा रहा है।

'स्वप्न रस' में सवाल खुद से पूछे गए हैं कि अपने स्वप्नों को पाने के संघर्ष के दरमियान हम क्यों रुक जाते हैं, थक जाते हैं? क्यों हम बहाने बनाने लगते हैं कि छलांग लगाकर शिखर को, स्वप्न को पा लेने का अभी वक्त नहीं है? इस कविता में वीर रस के माध्यम से खुद से जबाब माँगकर सपनों के पीछे भागने के लिए खुद को झकझोरा भी गया है।

'क्यों गुलिस्ता उजड़ गया' शीर्षक, दिल्ली दंगों पर एक सवाल खड़ा करता है और जिसका जवाब सिर्फ दंगाइयों को नहीं, सरकारों को भी, समाज को भी और शायद हमें-तुम्हें भी अपने जेहन में झाँक कर देना चाहिए, पर हाँ इस बात का जवाब तो देना ही होगा।

आगे 'सब तुझ पर है' में शायद सच में सब कुछ उसी पर तो था जिसे हम आप खुद से ज्यादा भी पसंद करते थे। यहां पर सवाल किसी व्यक्ति विशेष से ना पूछ कर जवाब असहाय, निरीह परिस्थितियों से माँगा जा रहा है कि कैसे हम इतने दुर्बल, व्यर्थ और निरर्थक हो गए की हमारे बीच जो कुछ भी है, उसकी किस्मत तय करने की ज़िम्मेदारी, शक्ति और शायद समझ भी सिर्फ उसमें ही है।

'कि तुम हो कि नहीं हो कि होकर भी नहीं हो' में शायद आप उनसे मिल चुके हैं जिनसे मिलकर हमें ऐसा लगता है कि वह हमेशा हमारे साथ हैं और हम नित नई नई कहानियां उनको लेकर अपने मन में बुनते रहते हैं। फिर एक समय ऐसा आता है कि लगता है, 'हां सब कुछ अधूरा ही तो था, कि सब कुछ कोरा ही तो था'। यहाँ जवाब उनसे ही नहीं उन परिस्थितियों से भी माँगे गए हैं जो हमें ऐसी विवशताओं में डाल देती हैं कि हम दिल और दिमाग सब उनपे लुटा के 'उनके ना होने में भी उनका होना ढूँढ़ लेते हैं'।

‘क्यों ज़िन्दगी तनाव में है’ शोषक में आप ज़वाब मांगते हैं अपने मास्तिष्क से कि क्या ऐसी कठिन परिस्थिति आ गई थी कि प्रतिष्ठित कलाकार सुशांत सिंह राजपूत को आत्महत्या करनी पड़ी? अगर हमारा मस्तिष्क ऐसे सवाल खड़े करता है कि हमें हमारा जीवन व्यर्थ लगने लगता है, तो खुद के दिमाग को हमें कैसे समझाना चाहिए। कि हां शायद थोड़ी ही दूर पर मेरा टेलीफोन भी पड़ा है जिसे हम उठा ले, एक और प्रयास कर लें और कॉल लगाकर किसी जाने पहचाने को दिल में छिपी बातें करके मानसिक तनाव को थोड़ा हल्का करले। आजकल के तनाव भरे दौर में मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान बहुत ही आवश्यक है।

और जवाब सिर्फ हमने ही नहीं मांगे हैं, हमारे संविधान ने भी मांगे हैं, कि मैंने तो तुम सबको एक समान नजर से देखा है, जाना है, पहचाना है तो तुमने ऐसा क्या किया है, कि अपने बीच दीवारें खड़ी कर ली हैं और बांट दिया है एक दूसरे को कई नामों से, कई पहचानों से?

अंत में ‘एक सवाल मजदूरों का’ में कुछ सवाल मजदूर ने भी उठाये हैं बड़ी मासूमियत के साथ, जिनका जवाब हमें देना होगा भले ही शायद सवाल कुछ हास्यप्रद हो। सवाल चाहे जितने बुरे हो, चाहे जितने उथले हो- जवाब देना होगा क्योंकि एक बुरे सा बुरा सवाल भी ‘एक सवाल ना करने से’ बहुत ही बेहतर है।

सवाल पूछने और जवाब मांगने का यह सिलसिला यहीं खत्म नहीं होगा। हम फिर से सवाल पूछेंगे अगले संकलन में, क्योंकि हमारे संविधान का अनुच्छेद 51A हमें यह बताता है कि हमारा मौलिक कर्तव्य है कि हम सवाल पूछकर और जवाब मांगकर अपने देश और समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद, ज्ञान अर्जन और सुधार की भावना का विकास करें।

धन्यवाद हम फिर आएंगे नए सवालों के साथ और फिर कहेंगे “जवाब देना होगा” हाँ “जवाब देना होगा” ।

विषय - सूची

जवाब देना होगा

सवाल एक पत्रकार की कलम से

श्रम देवी

लुढ़कती अर्थव्यवस्था पर

स्वप्न-रस

क्यों गुलिस्ता उजड़ गया

सब तुझ पर है

तुम हो , कि नहीं हो , कि होकर भी नहीं हो

क्यों ज़िन्दगी तनाव में है ?

एक सवाल मजदूरों का

अखंड है भारत , एक है भारत

जवाब देना होगा

इस खण्ड में एक स्त्री के माध्यम से जवाब माँगा गया है, जिसने अपने जीवन चक्र में कई तरीके के जुल्म देखे हैं, जैसे भ्रूण हत्या, बाल विवाह और दफ्तरों में उत्पीड़न। जिसे पितृसत्ता की व्यवस्था ने सिर्फ लड़के पैदा करने के लिए मजबूर कर दिया है और उसकी खूबसूरती पर लांछन लगाया गया है। वह सवालों के जवाब मांग रही है चीख कर, चिल्ला कर और यह चेतावनी भी दे रही है कि अगर जवाब नहीं दिया गया तो आने वाली नस्लें और समय, सब को माफ नहीं करेगा।

हाँ मैं एक औरत हूँ,
और तुमने मुझे,
एक माँ, एक बहन,
एक पत्नी, एक बेटी,
के रूप में पहचाना है,
पर जब तुम्हारी नजरें,
सिर्फ मेरे तन को उकेरती हैं,
मन मेरा खिन्न बहुत होता है,
और मुझे लगता है यही समय है,
कि तुम्हें कटघरे में खड़ा करके,
तुमसे सवाल कई सारे किये जायें,
और तुम्हें जवाब देना होगा, हाँ तुम्हें जवाब देना होगा।

मेरी जो आबरू है,
जो मेरी होकर भी, मेरे हाथों में नहीं है,
क्योंकि तुम इसके रहनुमा बन बैठे हो,
इसके चौकीदार बन बैठे हो, इसके तलबगार बन बैठे हो,
और मेरे जिस्म को जब मैं चलती हूँ,

तो ऐसे निहारते हो कि जैसे नोच लेना चाहते हो,
हां घर पर भी महफूज नहीं हूं मैं,
बस इस्तेमाल करके जैसे महज इस्तेमाल की चीज हूं,
फेंक देना चाहते हो सड़कों पर,
और फिर मोमबत्तियां जलाते निकल आते हो उन्हीं सड़कों पर,
जवाब देना होगा, तुम्हें जवाब देना होगा ।

कि जब मैं रोती हूं, चीखती हूं,
कोख में रहकर भी महफूज नहीं हूं मैं,
कि साँस मेरी दबा दोगे तुम कहीं,
दफना दोगे कोख में ही मुझे कहीं,
अगर बाहर मैं निकली तो ले जाकर छोड़ दोगे,
कहीं किसी गली कूचे के कूड़ेदान में,
अपनी इज्जत बचाने के वास्ते, गाड दोगे मुझे,
और फिर चिल्लाओगे, बेटियां बचाओ, बेटियां बचाओ,
बिना बताए किसी से कि यह तुम ही तो हो जिनसे बचानी है,
जवाब देना होगा, तुम्हें इसका जवाब देना होगा

कि जब मैं एक बच्ची हूं, एक बेटी हूं,
तुम बिना मेरी मर्जी के,
विदा कर दोगे किसी बुजुर्ग के साथ,
जो हर रात आकर मेरे जिस्म पर,
अपनी हैवानियत के फरेब लिखेगा,

और तुम खुश होगे अपने कंधे से मेरा बोझ उतार कर,
जश्न अपना मनओगे मेरी सिसकियों के बीच में,
मेरी चीखों को अनसुना करके,
जवाब देना होगा, तुम्हें भी जवाब देना होगा ।

कि बड़ी होकर जब मैं स्कूल में जाऊंगी,
काम करने का हौसला आजमाऊंगी,
तुम फर्बियां कसोगे, फूल लेकर मंडराओगे आगे पीछे,
और ना कहने पर मेरे एक बोटल तेजाब से,
मेरी बेलगाम खूबसूरती को नहला कर सबक सिखाना चाहोगे,
हर रास्ते में रोड़े अटका कर जलील करोगे,
हर दफ्तर में अपनी बदसलूकी से,
फिर लांछन लगाओगे हमारी ही आदतों पर,
और दावे करोगे हम एक महान मुल्क हैं,
हम एक महान कौम हैं, हम एक महान समाज हैं,
जवाब देना होगा, तुम्हें इसका भी जवाब देना होगा ।

कि जब तुम मुझे देवी का दर्जा देकर,
दहेज मांगोगे और दासी बनाकर,
हर रात थप्पड़ बरसाओगे,
अपना तो खुद हर एक कलियों पर इतरा कर,
मस्त भंवरे सा दिन भर ।
रात में, इसी देवी से जबरदस्ती करके,

अपना उन्माद शांत करोगे,
फिर # हैप्पी मैरिड फैमिली का टैग लगा कर,
हमारी हर आजादी पर पाबंदी लगाकर,
सिर्फ काम करने और बच्चा पैदा करने की मशीन बना जाओगे,
तो जवाब देना होगा, इस बात का भी जवाब देना ।

कि जब हर बार तुम एक मां से सिर्फ बेटे पैदा करने को कहोगे,
और अगर ना कर सकी तो मारोगे, तिरस्कार करोगे,
ना खाने को मिलेगा, ना पहनने को अपनी मर्जी का कुछ,
और फिर अपनी सलामती के लिए, उपवास भी हम ही से करवाओगे,
अगर विधवा हो गई तो जला आओगे,
घर से निकाल कर दूर फेंक दोगे, गिद्धों के बीच में नोचे जाने के लिए,
और फिर मां को दुर्गा का दर्जा देकर,
पूजा करने का स्वांग रचाओगे,
जवाब देना होगा, तुम्हें इस बार भी जवाब देना होगा ।

कि जब तुम मर्द, अपना दर्द बयां कर रहे होंगे इत्मीनान से,
गरीब होने का दर्द, दलित होने का दर्द, अश्वेत होने का दर्द,
अल्पसंख्यक होने का दर्द, आदिवासी होने का दर्द,
और हमारा दर्द तुम क्या, हम औरतें भी नहीं समझना चाहेगीं,
खुद औरतें ही औरतों पर लानत बरसायेगीं,
दबा जाओगे हमारे ऊपर हर समय हर जगह होने वाले जुल्म को,
मजाक मे यह कहकर कि ये औरतें भी “क्या खूब जुल्म ढाती हैं”,

तो तुम्हें जवाब देना होगा, हर बार जवाब देना होगा I

कि इस समय,
शायद सवाल ना पूछे जाएं,
घरों के अंदर, दफ्तरों में, संसद में, अदालतों में, सड़कों पर,
मगर इतिहास तुमसे जवाब मांगेगा,
कि कैसे तुमने हमें और हमारी हसरतों को चुन चुन कर मार डाला,
और आने वाली नस्लें हंसेगी तुमपे, तिरस्कार करेंगी तुम्हारा,
थूकेंगीं तुम पर,
तो तुम्हारी रूह को भी आकर,
कटघरे में खड़ा होकर सबके सामने,
जवाब देना होगा, हां इन सब का जवाब देना होगा II

सवाल एक पत्रकार की कलम से

इस संकलन में जवाब पत्रकारों से मांगा जा रहा है कि उनकी कलम ने क्यों सवाल पूछने बंद कर दिए हैं । फिर जवाब कैसे और कहां मिलेंगे? आज पत्रकारों की कलम बड़ी फ़ीकी सी क्यों पड़ गई है । पत्रकारिता के नाम पर पत्रकारों की कलम सिर्फ उन्माद ही क्यों पैदा कर रही है?

एक प्रश्नचिह्न था कागज पर,
पर प्रश्न वहा पर था नहीं ।

उस प्रश्न ने कलम से प्रश्न किया,
तुमने मुझको क्यों लिखा नहीं?

तो मैंने प्रश्न को समझाया,
की प्रश्न पूछना है मुश्किल ।

है जनता अंधभक्ति में,
और ये बहरो की है महफ़िल ।

तुझको अगर लिख भी दूं,
तो भी तू घूमा दिया जाएगा ।

और प्रश्न के जवाब में एक नया,
प्रश्न खड़ा किया जाएगा ।

प्रश्न पूछने वाले खुद,
अब बिके हुए गद्दार है ।

कुछ पैसों में बिक गए,
कुछ बुजदिल, कुछ लाचार है ।

जिस पक्ष से करना प्रश्न है,
वो पक्ष रसूखदार है ।

उस पक्ष की ही ये सत्ता है,
उस पक्ष की ही सरकार है ।

थाना, चौकी और प्रशासन,
उनके ही चाटुकार है ।

ये मीडिया भी उनकी है,
और उनके ही अखबार है ।

उनसे प्रश्न पूछने वाले अब,
कहलाते गद्दार है ।

उनसे प्रश्न पूछने वाले अब,
कहलाते गद्दार है ।।

श्रम देवी

फिर 'श्रम देवी' में यह सवाल लॉक डाउन के दौरान शहर से लौटती हुई एक प्रवासी मजदूर महिला भी पूछ रही है और हमें जवाब देना होगा कि वह शहर जो उसको बड़ा उसका सा लगता था आज उसी के लिए उसमें जगह क्यों नहीं है? कि वह सरकार जो हर बार वायदे करती थी उससे, आज उसको घर से निकाल कर जब सड़क पर फेंक दिया गया तो चुप क्यों है? इस मार्मिक चित्रण के माध्यम से उसकी अदम्य जिजीविषा को भी नमस्कार किया गया है।

श्रम देवी,
अनवरत बूंदें माथे पर पसीने की पोंछती,
और सर को लगातार ढकती पल्लू से,
गठ्ठरों से निकलती महक की तरह,
नगर को अलविदा कहती हुई,
बढ़ चली अपने लक्ष्य को I
श्रम की देवी, साक्षात् सी प्रवासिनी,
कौंधते हृदय से, शायद थोड़ा सा कोसते हुए,
बढ़ चली वो अपने लक्ष्य, अपने घर को II

भाव- शून्य मुख लिए,
पद निस्तेज भाग हुए,
विकर्ण बन चले थे डग,
कदम जो डगमग हुए I
निर्मम निस्तेज हस्त जो बन चुके थे लकड़ियां,
टूटती चरमराती सी पंक्तियों में कश्तियां,
फिर भी खींच के अपने होश को, बेहोश सी,
बढ़ चली वो निर्बाध सी अपने लक्ष्य, अपने घर को II

गौर वर्ण था घिसा,
आज इस कर्म पर,
चर्म ही तो था बचा, आज इस मर्म पर I
बिलखती कोख में सूनी आंखें ही थी बची,
निस्तेज मस्तक पर कृपाण सी खिंची,
पग डगमग हुए, पेड़ की शाख से,
समेट सहज साहस को अपने वस्त्र सा,
नापती अपने क़दम से देश के विकास को,
बढ़ चली वह अपने लक्ष्य, अपने घर को II

शहर था सारा पीछे छूटा,
अब कर्म भी, शर्म भी,
आसमान उगल रहा अंगार की ज्वाल को,
चरण उसके शीतल कर रहे, सड़क के उबाल को
कंधे थे भले झुके हुए, बालिका के भार से,
किन्तु हौसले ना ध्वस्त हुए, जमीन के अंगार से I
खींचती **मातृत्व** के जोर से,
जीवन के इस बोझ को,
बढ़ चली वह अपने लक्ष्य, अपने घर को II

नगर था सारा उनको भूला,
उस परिश्रम के रक्त, उस स्वेद को,
स्मरण में सिर्फ रखा गया,

मै और तुम के भेद को,
कारखाने हमारे बंद तो, तुम्हारी जरूरत क्या है?
ये शहर सिर्फ हमारा है,
इसमें तुम्हारा क्या हो?
बिना प्रश्न इक किये, भाग्य को संग लिए,
बढ़ चली वह अपने लक्ष्य, अपने घर को ।।

सड़क पर भूख से बिलख रही,
उसके परिवार की सारी क्रांतियाँ,
कतार में जो चल पड़ी,
प्रवासी श्रमिकों की पंक्तियाँ,
मिट गयी है सरकार से भी,
मदद की सारी भ्रान्तियाँ ।
आस बस यही बची,
कि गांव में भी कही जाएंगी,
शायद इस जीजिविषा की किवदंतियां,
सोच के, मन मसोस के इस बात पे,
शायद पहुंच जाये वह, अपने लक्ष्य, अपने घर को ।।

लुढ़कती अर्थव्यवस्था पर

इस कविता में लुढ़कती अर्थव्यवस्था के बीच सरकार के 'आल इस वेल' कहने के रवैये को लेकर व्यंग्यात्मक रूप से जवाब माँगा जा रहा है।

कौन सा ये पहली मर्तबा है?
की लुढ़क रही अर्थव्यवस्था है?
इतनी भी ना हालत अभी खस्ता है,
इतनी भी तो ना गंभीर अवस्था है।

क्यों व्यर्थ में विलाप कर रहे हो?
क्यों ऐसे सवाल कर रहे हो?
मिया तुम भी कमाल कर रहे हो
क्यों खामखां में बवाल कर रहे हो ?

डूबने दो अगर बैंक कोई डूब रहा है,
भागने दो कर्ज लेकर कोई भाग रहा है,
अरे! होने दो बन्द उद्योग धंधों को,
कुछ ना फर्क पड़ रहा मेरे बन्दों को।

चलने दो जो जैसा चल रहा है,
ये देश पहले से तो बदल रहा है।
देश पहले से ही कीचड़ में था,
अब कीचड़ में कमल खिल रहा है।

गिरने दो, रुपया औंधे मुंह गिर रहा है?

बढ़ने दो भाव दाल- आटे का बढ़ रहा है?
लगने दो आग पेट्रोल- डीजल के दामों में
अरे! सड़ने दो अनाज गोदामों में।

क्या हुआ अगर बेरोजगारी बढ़ी है?
क्या हुआ जो भुखमरी की घड़ी है?
क्या हुआ अगर किसान कर्ज से मर रहा है?
ये देश पहले से तो बदल रहा है।

क्या तुमको नजर नहीं आता?
पाकिस्तान हमसे डरा हुआ है ।
अरे! चीन की हालत भी तुम देखो,
चीन भी तो हमसे पिछड़ रहा है।

हर जगह अपना डंका बज रहा है,
तो क्या हुआ गरीब अगर मर रहा है,
ये तो 70 सालो से विपक्ष भी कर रहा है,
लूट कर अपनी जेबों को भर रहा है॥

स्वप्न-रस

"स्वप्न -रस" में सवाल खुद से पूछे गए हैं कि अपने स्वप्नों को पाने के संघर्ष के दरमियान हम क्यों रुक जाते हैं, थक जाते हैं? क्यों हम बहाने बनाने लगते हैं कि छलांग लगाकर शिखर को, स्वप्न को पाने का अभी वक्त नहीं है? इस कविता में वीर रस के माध्यम से खुद से जबाब मांगकर सपनों के पीछे भागने के लिए खुद को झकझोरा भी गया है।

तेरा पथ है खंडहर,
तो तू भी कुशल पर्वतारोही,
कब गिरेगा, कब उठेगा?
व्यर्थ इस पर पल गवाँना ।

स्वयं हथेली की पकड़ से,
मिलकर बस अब चलते जाना,
क्या है रुठा, क्या है छूटा?
ना अब इस पर दिन गवाँना ।

स्वप्न के इस मंच से,
रास्ते अब दिखते कई,
क्या भला है, क्या बुरा है?
व्यर्थ है, संशय बढे ।

हृदय की इस स्वप्न पे तू,
अब छांव कोई आने ना दे,
कौन है आया, कौन गया है?
अनर्गल से बस आशय हटे ।

सोपान के किसी स्वप्न से,
शिखर को तू विस्मृत ना कर,
क्या करेगा, क्या नहीं?
मन को तू आश्रित ना कर ।

आधार से आकार ले,
आकाश पर आगाज कर,
तू प्रकाश है प्रकाश का,
प्रकाश को भी सुवास कर ।

कोटि कोटि के कदम से,
कोटि- कोटि कदम तू चले,
क्यों है रुकना, क्यों है चलना?
सवाल अब यह व्यर्थ है ।

स्वार्थ है अगर तेरा तो,
स्वार्थ भी यह सत्य है,
कौन है रोके, कौन है खींचे?
व्यर्थ यह सब, असत्य है ।

क्या है मिथ्या, क्यों मलिन है?
मन के तेरे स्वर कई,
तू प्रखर है, तू प्रवर है,
है अगर ईश्वर कहीं ।

सबसे ऊपर तू खड़ा है,
मन में रख शंका नहीं,
कौन भला है, कौन बुरा है?
तू भला, सबसे सही I

स्वप्न ही तेरी धुरी है,
स्वप्न ही तेरी धरोहर,
स्वप्न ही तेरी धरा है,
तू भी तो सिर्फ स्वप्न ही है?

स्वप्न के इस समझ से,
स्वप्न से संवाद कर,
स्वप्न के अभाव में था अब तक,
अब स्वप्न का संवाह कर I

ऐ बटोही राह पर चल,
राह पर रुकते नहीं,
बढ़ चले तो बढ़ चले,
बढ़ते कदम थकते नहीं I

कौन कहता है स्वप्न ना देखिए,
अपने हृदय, अपनी समझ से?
देखते हैं सपने सभी,
अपने समय, अपनी उम्र में II

क्यों गुलिस्ता उजड़ गया

(दिल्ली दंगों के बाद लिखा गया एक सवाल)

कवि धीरज कुमार ने इस अध्याय में दिल्ली दंगों से द्रवित होकर, दंगों के मार्मिक दृश्यों के माध्यम से दंगाइयों, सरकारों, समाज और खुद से भी जवाब माँगा है।

क्या गुलिस्ता उजड़ गया या इसमें अभी बहार है?
क्या बाकी कुछ अमन शहर में, या हवा हुई अंगार है?

किसने दी ये चिंगारी, किसकी ये जलती कार है?
क्यों फैला है शहर में दंगा, कौन जिम्मेदार है?

क्यों बेकाबू भीड़ सड़क पर, क्यों स्थिति लाचार है?
क्यों इतनी नाकाम व्यवस्था, क्यों इतना अत्याचार है?

क्यों है इनके हाथ में डंडे, क्यों मचा हुआ उत्पात है?
क्यों पड़ी है सड़क पर लाशें, क्यों हुआ ये रक्तपात है?

क्यों जली हैं ये दुकानें, क्यों बंद पड़े मकान हैं?
क्यों धर्म की आड़ में, हिंसक हुए इंसान हैं?

सीधा प्रश्न है मेरा, सीधा ही जवाब दो,
सीधे इस सवाल का, सीधा सा हिसाब दो।

किसको क्या है मिला, ये बस्तियां उजाड़ कर?
किसको मिली है खुशियां, ये नफरतें उछाल कर?

किस राम का हुआ तिलक, यूँ मस्जिदों को जीतकर?

कौन अल्लाह यहां लिख गया, मेरे मांदेरों को नोंव पर?

किसने है खेली होलिया, यूं खून से इंसान के,
किसने है उगला जहर ये, अपनी गंदी जुबान से?

क्या किया सरकार ने, काम अपना सही से?
क्या इंसाफ हो पाएगा, अदालत में यकीन से?

क्या शुरू हो पायेगी, वो ज़िन्दगी सुकून से?
क्या कोई मिटा पाएगा, ये दाग सने खून से?

कौन खिलाएगा उस मां को रोटी, जिसका है बेटा मरा?
कौन स्कूल ले जायेगा, जिस मासूम का बाप ना रहा?

कौन पनाह देगा उसे, जिसका है घर उजड़ गया?
कौन काम देगा उसे, जिसका रोजगार बिगड़ गया?

क्यों नफरत की आंधी चली, मानवता का बहा रक्त है ।
और क्यों दबो कुचलो पर ही, सरकार अपनी सख्त है?

क्यों राजनीतिक रसूखदार, आज भी दागदार है?
क्यों आंखो पे पट्टी बंधी, क्या कर रही सरकार है?

क्यों गुलिस्ता उजड़ गया, या इसमें अभी बहार है?
क्या बाकी है फूलों में खुशबू या हवा हुई अंगार है?

सब तुझ पर है

इस कविता में जवाब किसी व्यक्ति विशेष से ना मांगकर उन असहाय, निरीह परिस्थितियों से माँगा गया है, जिसमे हम इतने दुर्बल, व्यर्थ और निरुद्देश हो जाते हैं कि इक रिश्ते में जो कुछ भी है, उसकी किस्मत तय करने की ज़िम्मेदारी, शक्ति और शायद समझ भी सिर्फ़ एक पर ही आ जाती है।

फिर एक बार खड़ा हूं, तेरी महफ़िल में तमाशा बनकर,
तू हंस लें, हंसा लें, गले से लगा ले- सब तुझ पर है I
मैं उपयोग कि एक शह हूं, दिये की एक लय हूं,
इस्तेमाल कर ले, बूझ ले, बुझा ले- सब तुझ पर है I
मैं तो महज एक वजह हूं मुस्कुराने की, भूल जाने की,
हस ले, हसा ले, यादों में बसा ले- सब तुझ पर है I
मैं हूं उम्मीद की एक किरण, तूफ़ान के साये में लिपटी हुई,
बच ले, बचा ले, दोस्ती बढ़ा ले- सब तुझ पर है I
मैं हूं तुम्हारी आखिरी ख्वाहिश, और पहली पसंद भी,
भूल जा, याद रख, हाथ बढ़ाकर पा ले- सब तुझ पर है ॥

फिर एक बार खड़ा हूं, तेरी महफ़िल में नुमाइश बनकर,
देख ले, दिखा ले, सब से छुपा ले - सब तुझ पर है I
मैं हूं तेरे ही शब्दों की गूंज और तेरी ही खुशबू भी,
सुन ले, सुना ले, खुद में मिला ले- सब तुझ पर है I
मैं हूं तेरी ही कल्पना और तेरी ही कहानियां भी,
तू बन ले, बना ले, हवा में उड़ा दे- सब तुझ पर है I
मैं हूं तेरे कोमल एहसासों की एक कड़ी भी, तेरी लड़ियाँ भी,
कह ले, सुना ले, तोड़ दे- सब तुझ पर है I

और मैं ही हूँ तेरे नफरतों का एक इल्म, तेरी साजिशें भी,
रच ले, रचा ले, दुनिया से मिटा दे- सब तुझ पर है ।।

तुम हो, कि नहीं हो, कि होकर भी नहीं हो

इस कविता में विवरण उन लोगो का है, जिनसे मिल के हमें ऐसा लगता है कि वह हमेशा हमारे साथ हैं और हम नित नई नई कहानियां उनके इर्द गिर्द बुनते रहते हैं। फिर एक समय ऐसा आता है कि लगता है कि 'हां सब कुछ कोरा ही तो था'। यहाँ जवाब उनसे ही नहीं उन परिस्थितियों से भी मांगे गए हैं जो हमें ऐसी विवशताओं में डाल देती हैं कि हम दिल और दिमाग सब उनपे लुटा के उनके 'ना होने में भी, उनका होना ढूँढ़ लेते हैं'।

तुम हो,
तम में एक हल्की सी किरण की भांति भावुक,
अपने उदगम से निकलकर, अपने उदगम में ही भटकती,
साँझ को दूर झोपड़े में जलती लौ की तरह,
भोर में सूरज की अंगड़ाईयो के संग,
चलते हुए बैलों के खुरों की आहट की तरह ।

तुम हो,
चिमनियों से निकलने वाले धुएं की तरह,
अंगड़ाइयां भरती हुई और आसमां चढ़ती हुई,
बारिश में, बीच जंगल में, भीगे पत्तों सी,
झरते झरनों की तरह, झरझर करती हुई,
तालाबों में से सिसकने वाले, बुलबुलों की तरह,
निस्तब्ध गुदगुदाती हुई मेरे मन को,
जो मिट जाते हैं, सदा खुद को बढ़ाने में ।

तुम हो,
दूर सूनसान वन में गिरती पत्तियों की तरह,

कुछ नए अन्न उपजाने को,
हिरणों के झुंड में, नाचते मयूर की तरह,
सबका मन बहलाने को,
अथाह विस्तृत सागर में, कौंधती इक नाव की तरह,
जिसकी मंजिल तय करती, केवल हवाएं हैं ।

तुम हो,
घर के मुंडेर पर बैठे, पंछियों के झुण्ड की तरह,
चहकती हुई और गुदगुदाती हुई मेरे मन को,
हरी घास में भी बिदकते हुए, खरगोश की तरह,
अपनी आदतों से ही, रिझाती हुई मेरे मन को,
अपने घोंसले में गुस्साए, कोयल की तरह,
जो लड़ने की आतुरता को, अपने होठों पर लिए है ।

तुम हो,
सर्द ठंडी की उस धूप की तरह,
जो कि मेरे चेहरे को छूकर, मेरे घाव भर जाती हैं,
पानी में उछलते उस पत्थर की तरह,
जो मेरे मन में तरंगे, पैदा कर जाती हैं,
ताजी हवा की तरह सुबह- सुबह,
जो लगकर गले, सुकून दे जाती हैं ।

तुम हो,
दुपहर की नींद में आए उस स्वप्न की तरह,

जो जगा जाती हैं, ख्वाबों की दुनिया से,
और डरा भी देती हैं, कि ख्वाब पूरे ना हुए तो क्या होगा?
और तुम हो रात की उस नींद की तरह भी,
जो घंटों कड़ी मशक्कत के बाद भी हरदिन,
आंखों में नहीं समा पाती है ।

तुम हो,
अपने दरमियां सिमटे, उस सन्नाटे की तरह,
जो सवाल पूछने पर मिट जाएंगे,
और इस डर से,
ना कुछ तुम पूछती हो, ना कुछ मैं पूछता हूं,
ना कुछ मैं बोलता हूं, ना कुछ तुम बोलती हो ।

तुम हो,
दरिया की उस लहर की तरह,
कि जो मैं जब- जब नाम लिखने की कोशिश करता हूं,
मिटा देती है, उसे बड़ी मासूमियत से,
और फिर खींच देती हैं उन कवचो से,
पहेलियां मेरे इर्द- गिर्द, बड़ी चतुराई से,
जिसे सुलझाने में, तमाम उम्र सी बीती जा रही है ।

तुम हो
मेरी उस परछाई की तरह,
जो ना मुझमें समाती है, ना मेरा साथ छोड़ती है,

जब तलक मेरे साथ रोशनी है ।
जो अंधेरो से डर के कहीं छुप जाती है,
और चुपके- चुपके बस यही दुआ करती है,
कि जिंदगी में मेरे अँधेरे हो ना कभी ।

तुम हो,
मेरे हाथों की लकीरों की तरह,
जो मेरी किस्मत तय करती हैं,
मेरे माथे के शिकन की तरह,
जो मुझे एहसास दिलाती हैं,
कि कितना सोचता रहता हूँ मैं,
शायद तुझे ही बूझता रहता हूँ मैं ।

तुम हो,
कोरे कागज के किसी कोने में, कुम्हलाई सी,
रेत पर गिरने वाले सूरज की किरणों सी, लेती हुई अंगड़ाई सी,
गुलमोहरों के फूल की पंखुड़ियों सी मुस्काई सी,
नाक पे गुस्सा लेकर दौड़ते, तीतरो सी तिलमिलाई सी,
तुम हो, कि नहीं हो, कि होकर भी नहीं हो?

तुम जानती हो, मैं जानता हूँ पर मैं जानता कुछ भी नहीं हूँ,
तुम सोचती हो, मैं सोचता हूँ पर मैं सोचता कुछ भी नहीं हूँ,
तुम चाहती हो, मैं चाहता हूँ पर मैं चाहता कुछ भी नहीं हूँ,
तुम बोलती हो, मैं बोलता हूँ पर बोलता मैं कुछ भी नहीं हूँ,

तुम खेलती हो, मैं खेलता हूँ फिर भी खेलता मैं भी नहीं हूँ?

कि तुम हो,
मेरी वह कोरी कल्पना,
जो आज तक कोरे कागज के किसी कोने पर,
बस कोरी ही रह गई I
बस कोरी ही रह गई II

क्यों ज़िन्दगी तनाव में है?

यह कविता सुशांत सिंह राजपूत की आत्महत्या की खबर से आहत होकर लिखी गई है। यहाँ हम ज़वाब अपने मस्तिष्क से मांगते हैं कि क्या ऐसी कठिन परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि हमारा मस्तिष्क ऐसे सवाल खड़े कर देता है कि जीवन व्यर्थ सा लगने लगता है? और यहाँ बतलाया भी गया है कि इन परिस्थितियों में हमें कैसे ज़वाब देकर खुद के दिमाग को शांत कराना चाहिए।

ज़िन्दगी तनाव में हो,
या डूबती सी नाव में हो,
तो भी रख तू हौसला,
तेरा भी है घोंसला।

डूबने ना खुद को देना,
मूँद ना आंखों को लेना,
एक आखिरी चेष्टा से,
हिम्मत खुद की बांध देना।

फ़िक्र घोंसले की करना,
उड़ान होंसले की भरना,
कमजोर लम्हों के भंवर में,
तू ज़िन्दगी ना खोने देना।

बहुत अनमोल ज़िन्दगी है,
जुड़ी तुझ से कई कड़ी है,
ये मुश्किलों की दो घड़ी है,
इस वक़्त में हिम्मत जुटा के,

ये दो घड़ी गुजार देना ।

रात चाहे हो कितनी काली,

रात को गुजार देना ।

आंख में हों गम के आंसू,

आंसू अपने थाम लेना,

चाहे कुछ भी हो समस्या,

सब्र से तू काम लेना ।

मुश्किलों की हर घड़ी में,

तू ईश्वर का नाम लेना,

या माँ को ही पुकार लेना,

तू खूब सारा प्यार लेना,

गोद में सर रख कर,

तू बोझ सब उतार देना ।

एक सवाल मजदूरों का

इस कविता में कुछ सवाल मजदूरों ने उठाये गए हैं, बड़ी मासूमियत के साथ, जिनका जवाब हमें देना होगा, भले ही शायद सवाल कुछ हास्यप्रद और उथले हों- क्योंकि एक 'बुरे सा बुरा सवाल भी' एक सवाल ना करने से बहुत ही बेहतर है। सवाल मूल्य तटस्थ होते हैं उन्हें अच्छा या बुरा, उनको उत्पन्न करने वाली परिस्थितियां बनाती हैं।

वो मकान तेरा बना जब,
तो इंटे वो उठा रहा था,
वो पसीने में था लथपत,
तू हवा ठंडी खा रहा था।
थक चूर कर वो दो पल बैठा,
तू आंख उसको दिखा रहा था,
सांसें उसकी फूल रही थी,
और तू उस पर गुर्ग रहा था।

वो मजदूर था थका हारा,
वो मेहनत की खा रहा था।
तेरी बीवी खा खा कर,
इतनी मोटी हो गई...
वो बेचारा उसको लेकर,
रिक्शा खींचे जा रहा था।

वजन था उनका थोड़ा ज्यादा,
रिक्शा भी था थोड़ा धीमा,
तेरी बीवी को उस गरीब पर,

इस बात पर गुस्सा आ रहा था ।

भैया थोड़ा तेज चलाओ,
वो पूरी जान लगा रहा था,
वो रिक्शे वाला था साहेब,
वो भी मेहनत की खा रहा था।

आलू ले लो, गोभी ले लो,
सड़क पर वो चिल्ला रहा था।

वो ठेले वाला भैया,
घर ताज़ी सब्जी ला रहा था,
और तू उससे करता मोल भाव,
अपनी दौलत बचा रहा था।

अखंड है भारत, एक है भारत

और अंत में जवाब हमारे संविधान ने भी मांगे हैं, कि कैसे मैंने तो तुम सबको एक समान रूप से पहचाना है, फिर भी तुमने अपने बीच दीवारे खड़ी कर ली हैं और बांट दिया है एक दूसरे को कई नामों से, कई पहचानों से।

मैं संविधान हूं, कहता हूं मैं, सब मेरे लिए समान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

मैं भारत हूं, कहता हूं मैं, तुम सब मेरी संतान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

अखंड है भारत, एक है भारत, तुम सब भारत की शान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

प्रथम भारतीय, अंततः भारतीय, ये ही बस पहचान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

कुछ भी हो धर्म जात तुम्हारी, पहले तुम इंसान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो,

रंग हो प्रिय तुम्हें केसरी, या हरे रंग पर गुमान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

हो रंग तिरंगे का तुम बंधु, तुम तिरंगे की शान हो,
तुम हिन्दू, या सिख, ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

भाषा हो विविध अनेक यहां, पर एक सी जुबान हो,

तुम हिन्दू, या सिख ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो।

चाहे अलग हो खान पान, तुम एक थाली के पकवान हो,
तुम हिन्दू, या सिख ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो ।

चाहे अलग पोशाक तुम्हारी, तुम एक ही कपड़े का थान हो,
तुम हिन्दू, या सिख ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो ।

चाहे अलग रीति रिवाज तुम्हारे, संस्कृति सभी महान हो,
तुम हिन्दू, या सिख ईसाई हो, या चाहे मुसलमान हो ।

अलग है राज्य अनेक यहां, कश्मीर हो या राजस्थान हो,
मैं सर्विधान हूं कहता हूं मैं, तुम पहले हिंदुस्तान हो ।

लेखक-पारेचय



श्री शशांक सिंह , का जन्म ग्राम सराय सैय्यद खान,भदरी प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश में एक सामान्य से मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ । सामाजिक मुद्दों पर लिखने की कुशलता उन्होंने अपने अभिवावको और अध्यापको से ग्रहित की। इन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पैतृक स्थान में, तुलसी इंटर कॉलेज, कुंडा प्रतापगढ़ से अर्जित की । तत्पश्चात मर्चेट नेवी के कॉलेज T. S. CHANAKYA मुंबई, में अध्ययन कर दुनिया के मानचित्र को अपने ख्वाबों के रंगों से भरने और बहुत कुछ सीखने के लिए मर्चेट नेवी अफसर के तौर पर कार्य किया । दुनिया की बहुत सारी सांस्कृतिक विरासतों को अपने आप में समेटे हुए, UPSC परीक्षा की तैयारी कर समाज देश दुनिया को बारीकी से समझा । जीवन में अर्जित समस्त अनुभवों को साझा करने और समाज को बेहतर बनाने के लिए इन्होंने परिपक्वता पूर्ण लेखन को अपना माध्यम बनाया । अपने पहले ही संकलन "जवाब देना होगा" के माध्यम से अपने मौलिक कर्तव्यों का अनुसरण करने और बेहतर समाज बनाने की ख्वाहिश शायद इन्हे आप लोगों के प्रेम से सदैव प्रेरित करती रहे ।



श्री धीरज कुमार का जन्म उत्तरप्रदेश के गाजियाबाद जिले के बालूपुरा नामक स्थान में हुआ। हिंदी भाषा में इनकी रुचि बचपन से ही रही है। इनकी आरंभिक शिक्षा गाजियाबाद से हुई है। तदोपरान्त इन्होंने चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय कैंपस से सूचना प्रौद्योगिकी में अभियंता स्नातक की उपाधि प्राप्त की। तकनीकी क्षेत्र से जुड़े होने के बावजूद इन्होंने शिक्षण कार्य को अपनी जीविका बनाया। वर्तमान में ये राजकीय इंटर कॉलेज में कम्प्यूटर विज्ञान विषय के व्यवस्थागत अस्थायी अध्यापक के रूप में कार्यरत है। वास्तविक घटनाओं का कविताओं के माध्यम से चित्रण करना इनकी विशेषता रही है। इनकी अधिकतर कविताएं, सामाजिक मुद्दों पर आधारित

रहती है। कभी कभी ये प्रेम और श्रंगार रस पर भी कविताएं करना पसंद करते हैं। धर्मवीर भारती जी के ये बहुत बड़े प्रशंसक रहे हैं, जिनसे प्रेरणा पाकर ये उनकी एक किताब "गुनाहों का देवता" , जो कि एक उपन्यास है को काव्य रूप में संकलित कर रहे हैं ।

आप सभी से तहे दिल से ये आशा और गुजारिश करते हुए के हमें अपने विचारों और सवालों से अनुग्रहित करेंगे, किसी भी सुझाव के लिए कृपया यहाँ लिखें: nomadicdreamchanter@gmail.com



[Follow Us](#)



[Write](#)



[Subscribe](#)